International Journal of Sanskrit Research 2023; 9(3): 91-94

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2023; 9(3): 91-94
© 2023 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 11-02-2023
Accepted: 15-03-2023

जितेन्द्र शुक्ला
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
जितेन्द्र शुक्ला
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

भारतेन्दु के मौलिक नाटकों में भारतीय स्वतंत्रता का परिदृश्य

जितेन्द्र शुक्ला

सारांश
आधुनिक हिंदी के साहित्य के जनक व देशहितचिन्तक पत्रकार भारतेन्दु बाबू का बचपन उस दौर में बीता जब देश में 1857 की क्रांति की ज्वाला बहुत तेजी से फैल रही थी। भारतेन्दु जी ने अपने नाटकों के माध्यम से और ख़ासकर मौलिक नाटकों के माध्यम से उस समय की उस जनता को जगाने का प्रयास किया जो कम पढ़ी लिखी थी या फिर अनपढ़ थी। भारतेन्दु जी के मौलिक नाटकों में हमें भारतीय स्वतंत्रता की अलख स्पष्ट दिखाई देती है।

कूटशब्द : सांस्कृतिक इतिहास, भारतीय स्वतंत्रता, देशहितचिन्तक पत्रकार, मौलिक नाटकों

प्रस्तावना
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र उन युग–प्रवर्तकों में से है जिनके व्यक्तित्व के माध्यम द्वारा इतिहास की बिखरी हुई शक्तियाँ सिमट कर एक हो जाती है और जो भविष्य के लिए एक निश्चित और सुदृढ़ समन्वयात्मक मार्ग का सर्जन करती है। भारतीय इतिहास विशेषतः हिन्दी प्रदेश के सांस्कृतिक इतिहास में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का नाम यदि एक ओर पिछले एक शताब्दी के भारतीय इतिहास की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करता है तो दूसरी ओर, यूरोप की उन शकितयों की तरपफ हमारा ध्यान खींच ले जाता है जिन्होंने ईसा की अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों में भारतवर्ष के जीवन को ही नहीं, वरन् समस्त एशियाई देशों के जीवन में अभूतपूर्व परिवर्तन उपस्थित कर उसे स्पन्दित किया।

समस्या का चयन – एक समय था जब भारतवर्ष ने एशिया के अन्य देशों के मानव सभ्यता और संस्कृति को गौरवमय शिखर तक पहुंचाने में सक्रिय भाग लिया था। दैव संयोग से वे ही देश अवनतिशील हो चुके थे और जिस समय वे अपना निश्चेष्ट जीवन व्यतीत कर रहे थे उसी समय वे यूरोप की जीवित एवं गतिशील जातियों के सम्पर्क में आये सभी देशों का सामाजिक, धर्मिक, राजनीतिक, आर्थिक और साहित्यिक जीवन यूरोप सभ्यता के आघात से उत्तेजित हो उठा और उसमें नवस्पफूर्ति और चेतना का संचार हुआ जो जहां था वह वहीं न रह कर एक या दूसरी दिशा की ओर बह चलने के तत्पर हो गया। मार्ग में पूफल भी मिले और कांटे भी, किन्तु बढ़ते सभी गए, रुका कोई नहीं, यह निश्चित है। इस सार्वभौम ऐतिहासिक प्रक्रिया में भारतेन्दु हरिशचन्द्र तथा उनके नेतृत्व में हिन्दी प्रदेश ने सक्रिय भाग लेकर गतिशीलता का परिचय दिया।
ईसा की उन्नीसवीं शताब्दी के लगभग मध्य तक हिन्दी प्रदेश में परंपरागत भारतीय सभ्यता और यूरोपीय सभ्यता में पारस्परिक संघर्ष चलता रहा। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भारतीय सभ्यता और संस्कृति के प्राचीन केन्द्र काशी में रहते हुए दोनों का समन्वय उपस्थित किया, भटके हुओं को उन्होंने किनारे पर लगाया।
भारतवर्ष में पश्चिमी सभ्यता के साथ संपर्क स्थापित करने का अवसर सर्वप्रथम बंगाल को प्राप्त हुआ। 1828 में वहां ब्रह्म समाज की स्थापना हो चुकी थी। उस समय कलकत्ता सामाजिक, धर्मिक और साहित्यिक आन्दोलनों का केन्द्र बना हुआ था। और लगभग उन्नीसवीं शताब्दी भर बना रहा। किन्तु ज्यों–ज्यों अंग्रेजी राज्य का विस्तार उत्तर–पश्चिम की ओर होने लगा, त्यों–त्यों देश के उस भाग में भी पाश्चात्य विचारधरा का प्रभाव प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता गया। अंग्रेजी शिक्षा ने उसे तीव्रता प्रदान की। 1857 तक उत्तर–पश्चिम प्रदेशों में दो सभ्यताओं का पारस्परिक संघर्ष चलता रहा। तत्पश्चात् देश का जीवन निश्चित रूप से सांचे में ढलने लगा।

समस्या का आधर – हिन्दी साहित्य का उन्नीसवीं शताब्दी से इसी अंश से घनिष्ट सम्बंध है। नवीन राजनीतिक, आर्थिक और शिक्षा सम्बंधी व्यवस्था के पफलस्वरूप उत्पन्न नवीन विचारों का प्रभाव हिन्दी साहित्यिकों पर पड़े बिना न रह सका। ऐसे जागरूक व्यक्तियों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र अग्रेसर थे। अपने समकालीन साहित्यिकों का सहयोग भी उन्हें प्राप्त था। हिन्दी सामाजिक क्षेत्रा में जो स्थान स्वामी दयानन्द सरस्वती (1824–1883) का था वही स्थान भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का साहित्यिक क्षेत्रा में था। वास्तव में राजाराम मोहन राय, केशवचन्द्र सेन, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, दादाभाई नौरोजी, जस्टिस रानाडे प्रभृति सज्जनों की परम्परा में ही भारतेन्दु हरिश्न्द्र की गणना की जानी चाहिए। समस्त हिन्दी प्रान्त का साहित्यिक नेतृत्व उनके हाथ में था। राजनीति के स्थान पर साहित्य को अपना प्रधन साध्न चुनकर उन्होंने जनता के हृदय तक पहुँचने का प्रयत्न किया और उसके आशातीत सपफलता भी प्राप्त की। उनके मृत्यु के बाद भी उनके विचारों और आदर्शों का सम्मान और प्रचार होता रहा। उनके जीवन–काल में ही जनता ;मेरा आशय शिक्षित जनता से है। उस समय सभी आन्दोलन शिक्षित जनता तक ही सीमित थेद्ध ने उन्हें 'भारतेन्दु' की उपाधि प्रदान की थी। उनकी मृत्यु के बाद उनके साहित्यिक योगदान ने देश को गुलामी की जंजीरों से मुक्त कराने में अपना पूरा काम किया।
राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द जैसे सरकारी कृपा–पात्रा का जनता के हृदय पर शासन करने वाले भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ही मुकाबला कर सकते थे। उस काल में एक साधरण व्यक्ति ऐसा करने का साहस नहीं कर सकता था। उनकी मृत्यु के 134 वर्ष हो चुके हैं, किन्तु आज भी जब हम उनके विचारों का अध्ययन करते हैं तो तत्कालीन हिन्दी–प्रान्तीय अपार जनसमूह के अज्ञानाहांकार में वे प्रकाश–स्तंभ के समान दिखाई देते हैं।

डाटा का संकलन–मौलिक रचनाओं में 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' (1873) प्रहसन है। पहले राजा के पुरोहित और मंत्री मांसाहार का समर्थन है और बंगाली तथा पुरोहित द्वारार विध्वा–विवाह को शास्त्रा–सम्मत बताया गया है। दूसरे अंक वेदांती और बंगाली, शैव और वैष्णव के वाद–विवाद और रंडा–दास गडकीदास के आ जाने से उस सभा छोड़ कर चले जाने का उल्लेख है। तीसरे अंक में पुरोहित द्वारा मांसाहार और मदिरा–सेवन और राजा तथा मंत्री द्वारा वैदिकी हिंसा का समर्थन है। चौथे अंक में शैव और वैष्णव को छोड़कर अन्य स यम द्वारा दण्डित होते हैं। शैव और वैष्णव अपनी अकृत्रिम भक्ति के कारण कैलाश और वैकुण्ठ–वास पाते हैं। लेखक ने मांसाहारियों, मद्यपान करने वालों, पशु–बलि तथा अन्य सामाजिक पाखंडों का मजाक बनाया है। प्रसहन के प्रारम्भ में बादी और अंत में भरत वाक्य है।
'सत्य हरिचन्द्र' (1875) पौराणिक आख्यान तथा क्षेकीश्वर कृत 'चंडकौशिक' आधर पर लिखा गया किन्तु सर्वथा मौलिक नाटक है वह उनकी सर्वोत्कृष्ट कृतियों में से है। भारतेन्दु हरिश्चनद्र को यह रचना अत्यध्कि प्रिय थी उसमें सत्य–प्रतिज्ञ महाराज हरिश्चन्द्र की प्रसि कथा का चार अंकों में वर्णन है।
सम्पूर्ण नाटक में वीर रस का समावेश है। प्रारोचना में लेखक ने अपने व्यक्तित्व से सम्बंध्ति महत्वपूर्ण कथन दिए हैं। यह नाटक 1875 के अंत में निर्मित होकर दूसरे वर्ष 'काशी पत्रिाका' में क्रमशः प्रकाशित हुआ था।
'श्री चन्द्रावली' (1876) नाटिका में चन्द्रावली का कृष्ण के प्रति पूर्वानुराग जनित दिव्य प्रेम, विरह और अन्त में मिलन का सुन्दर वर्णन है। कथा मूलतः पौराणिक है भागवत और सूरसागर में भी चन्द्रावली का उल्लेख मिलता है।
'विषस्य विषमौषध्म्' (1876) भाण है, जिसके एक ही अंत में भाण्डाचार्य आकाश की ओर मुख कर 1875 में बड़ौदा के गायकवाड़ को कुप्रबंध के कारण गद्दी से उतारे जाने और उनके स्थान पर सयाजीराव के गद्दी पर बैठने की राजनीति घटना का उल्लेख करता है। इस ग्रंथ से भारतेन्दु की स्वदेश–भक्ति का परिचय मिलता है।
'भारत दुर्दशा' (1880) छः अंकों में विभक्त नाट्य–रासक या हास्य रूपक है जिसमें नाटककार ने भारत के प्राचीन गौरव, पारस्परिक पूफट और कलह के पफलस्वरूप यवनों के भारतागमन और भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना और आर्थिक शोषण तथा दुर्व्यस्था का वर्णन करता है।
'नीलदेवी' (1881) नवीन प(ति के अनुसार लिखा गया ऐतिहासिक गीत रुपक; नियोगातद्ध है। सम्पूर्ण कथानक दस अंकों में विभाजित है। पहले अंक में कथानक का प्रारम्भ न होकर हिमगिरि के शिखर पर तीन अप्सराएं दो पदों में क्रमशः भारत की क्षत्राणियों का यशगान और प्रेम–बधई गाते हुए दिखाई पड़ती है। नवीन रंगमंच के अनुसार यह एक प्रकार का कोरस–गान है।
'अंध्रेनगरी' (1881) प्रहसन के छः अंकों में भारतेन्दु ने दिखाया है कि जिस राज्य में गुण–अवगुण का भेद नहीं वहाँ की प्रजा का राजा की मूर्खता के चंगुल में पफंस जाने का डर बना रहता है। कहा जाता है कि बिहार प्रान्त के किसी जमींदार के अन्यायों को लक्ष्य कर उसे सुधरने के लिए उसकी रचना हुई थी।
मौलिक रचनाओं में से प्रेमजोगिनी (1875) नाटिका में नांदी आदि प्रारंभिक भूमिकाओं के बाद प्रथम अंक चार दृश्यों ;गर्भाकोंद्ध में काशी की वास्तविक दशा और वहां के गौरवान दर्शनीय व्यक्तियों, संस्थाओं और वस्तुओं का उल्लेख है। उसमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने जीवन के सम्बन्ध में भी संकेत दिये हैं।

विश्लेषण –भारतेन्दु जी के मौलिक नाटकों में एक इशारा था जो उस समय जनता के लिए एक प्रेरणा थी कि वे अपने ही देश में अपनी ही माटी में गुलामी की जंजीरों में जकड़े क्यों रहे? क्यों अपना ध्न भी दे और जान भी भारतेन्दु के मौलिक नाटकों में देश को स्वतंत्रा कराने की आवाज छिपी रहती थी। उनका हर नाटक यह बताने का प्रयास करता है कि अब हम सभी को एक साथ होकर अंग्रेजों के खिलापफ लड़ना होगा। हमें अपनी संस्कृति, अपनी भाषा व अपने देश को बचाने के लिए यदि प्राण भी न्यौछावर करने पड़े तो हंसते–हंसते कर देना चाहिए क्योंकि यदि देश ही सुरक्षित नहीं है तो हम कैसे सुरक्षित होंगे?
भारतेन्दु इस बात पर खेद प्रकट करते हैं कि 'दुष्ट' मुसलमानों के अत्याचार से हिन्दुओं में राजभक्ति का लोप हो गया। लेकिन उस समय मुसलमानों में भी राजभक्त विद्वानों और वपफादार रईसों की कमी न थी। वास्तव में यह हिन्दु–मुस्लिम भेदभाव उन विद्वानों और रईसों तक सीमित था, जनसाधरण में राज्यभक्ति की तरह विद्वेस का अभाव भी था। इसीलिए भारतेन्दु की असगंतियों का आधार समूचा युग नहीं है, समूची जनता नहीं है, बल्कि एक वर्ग विशेष है, थोड़े से राजभक्त विद्वान रईस लोग भी थे।
भारतेन्दु ने देश दशा सुधरने के लिए राजाओं, रईसों और विद्वानों की तरपफ देखा, लेकिन उन्हें हर तरपफ निराशा ही हुई।
'भारत दुर्दशा' में यही नतीजा निकाला गया है कि अंग्रेजों से आशा करना व्यर्थ है, 'भारत दुर्दशा' अंग्रेज भक्ति और सामन्त भक्ति दोनों का ही पफातिहा है।
भारत दुर्दशा में उन्होंने कुछ पढ़े–लिखे लोगों को भी अकेले कुछ कर सकने में असहाय दिखलाया है। भारत–दुर्देव इन पढ़े लिखे लोगों पर हंसता है– 'हा हा हा'। कुछ पढ़े लिखे लोग मिलकर

देश सुधरना चाहते हैं। हा हा हा ! एक चने से भाड़ पफोड़ेंगे।'' 'भारत दुर्दशा' के पांचवे अंक में उन्होंने बुि(जीवियों पर चुभते व्यंग्य किये हैं। एक सज्जन पूछते हैं, ''क्यों भाई साब, इस कमेटी में आने से कमिश्नर हमारा नाम तो खारिज न कर देगे?'' ऐसे भक्तों को राजभक्त विद्वानों का प्रतिनिधि विद्वानों का प्रतिनिधि मानना चाहिए।

राजा, रईस, पंडित, विद्वान, सब तरपफ से निराश होकर भारतेन्दु इस एक ही नतीजे पर पहुंच सकते थे कि देश की विराट जनता का भरोसा करो। भारतेन्दु इस नतीजे पर पहुचे यह उनकी महत्ता का प्रमाण है। उन्होंने बार–बार जनता को अपनी एकता, अपनी शक्ति का भरोसा करने की शिक्षा दी ''तुम आप ही कमर कसो आलस छोड़ो और भाग्य के भरोसे मत रहो। इस आलोचना में घृणा नहीं है। उनकी आलोचना में दुख का भाव है, जनता के भाग्य के प्रति सहानुभूति है। और उत्थान का सन्देश अपने नाटकों में दिया है। भारत–दुर्दशा तथा भारत जननी राजनीतिक उत्थान की प्रेरक रचनाओं के रूप में प्रस्तुत की गई है। समकालीन राजनीतिक आन्दोलनों की प्रतिक्रिया नाटकों में समाहित प्राप्त होती है। इन्हीं नाटकों की परम्परा पर चलने वाले देश–प्रेम–प्रधन नाटक भारतो (र ;शरत कुमार मुखर्जी 1883द्ध भारत सौभाग्य (प्रेमघन–1888), भारत दुर्दशा ;प्रताप नारायण मिश्र–1902द्ध युग के प्रतिनिधि नाटक है, जिनमें भारतेन्दु की कृतियों की उपर्युक्त विचारधरा की छाप समाहित प्रतीत होती है।

भारतेन्दु के नाट्य साहित्य की विशेष सम्पति उनके प्रहसन नाटकों में व्यंग्य रूपकों की शैली का प्रयोग है। अंधेरनगरी, वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, तथा विषस्य विषमौषध्म् देशकाल तथा समाज के व्यंग्य रेखाचित्रा है। व्यंग्य प(ति के हास्य–प्रधन नाटकों के लिखने का प्रयोग भारतेन्दु द्वारा किया गया था और उपर्युक्त विचारधरा को युग के नाटककारों ने प्राथमिक स्थान दिया था।

तत्कालीन सामाजिक स्थिति के अनुरूप ही प्रहसनों में व्यंग्यों का लक्ष्य सामाजिक कुरीतियां, वेश्यावृत्ति के कुपरिणाम, समाज का असहाय नारी जीवन पश्चिमी सभ्यता के अन्ध उपासकों का सामाजिक दृष्टिकोण, ध्र्म के कथित ठेकेदारों का भ्रष्टाचार आदि व्यापक मनोवृतियाँ कार्य करती दृष्टिगत होती थी।

भारतेन्दु ने अपने मौलिक नाटकों के मंचन से स्वाधीनता को जगाने का प्रयास किया, जो समयोपरान्त सपफल भी रहा साथ ही जिन्हें हम सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक क्षेत्राों में हुए परिवर्तन को प्रत्यक्षतः दृष्टिगत कर रहे हैं।

भारतेन्दु के प्रहसनों का साहित्यिक स्तर समकालीन रचनाकारों की कृतियों से अध्कि उच्च था। युग के प्रमुख प्रहसनकार प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, राधचरण गोस्वामी तथा किशोरीलाल गोस्वामी आदि भारतेन्दु के प्रहसनों की मौलिकता को न पा सके।

भारतेन्दु ने नाट्य साहित्य में स्वतंत्रा परम्परा का प्रवर्तन किया। नाट्य विधन की रूढ़िवादी परम्परा के जटिल बन्धनों से उन्मय नाट्य–विधन की स्वतंत्रा सत्ता नाटयकार की साहित्यिक देन है। भारतेन्दु जी ने नाट्य–विधन सम्बंधी परम्परा में मध्यमवर्ती मार्ग का अनुसरण किया, नाट्य शैली में पूर्व और पश्चिम के नाट्य तत्वों का अपूर्व मेल दृष्टिगत होता है। साहित्य जगत को नाट्य तत्व सम्बंधी देन नाट्यकार भारतेन्दु का अनुसरण समकालीन नाट्यकारों ने किया, नाट्यशैली में पूर्व और पश्चिम के नाट्य तत्वों का अपूर्व मेल दृष्टिगत होता है। साहित्य जगत को बाह्य तत्व सम्बंधी देन नाट्यकार भारतेन्दु का नवीन प्रयोग था, जिस परम्परा का अनुसरण समकालीन नाटयकारों ने किया।

इनके पूर्व नाट्य साहित्य अध्किांश गद्य में लिखा गया था। संस्कृत नाटकों के अनुवाद की परम्परा प्रचलित थी, अध्किांश पद्य–गद्य मिश्रित नाटकों के प्रचलन से नाट्य–साहित्य का प्रारम्भिक रूप निर्मित हुआ था। नाटकों की भाषा ब्रज थी प्रबाध् चन्द्रोदय तथा आनन्द रघुनन्दन की शैली के नाटकों की भाषा में संकीर्णता थी।

राजा लक्ष्मण सिंह कृत– शकुन्तला तथा बाबू गोपालचन्द्र कृत– नहुष में क्रमशः नाट्य प्रगति का विकास दृष्टिगत होने लगा था। अनूदित तथा मौलिक रचनाओं का आरम्भ हो चुका था, परन्तु नाटकों की भाषा का प्रश्न साहित्य की दृष्टि से खटकने वाली थी। भारतेन्दु ने नाट्य साहित्य के बीहड़ वन के बीच में अपना मार्ग प्रशस्त किया। भाषागत दोषों में परिष्कार किया, नाट्य–भाशा को खड़ी बोली का कलेवर देकर नाटकों की रचना के लिये नवीन पथ–प्रदर्शन कार्य महत्वपूर्ण है।

ऐतिहासिक कथानकों का विकास नीलदेवी के आख्यान में मिलता है। ऐतिहासिक तथ्य निरूपण और घटनाओं में कल्पित पात्राों का संयोग भारतेन्दु की नीलदेवी में है, समाचीन नाटयकारों ने ऐतिहासिक कथानकों को अपने नाटकों की पृष्ठभूमि बनाया और युग पुरुष की नाट्यकला को विकास दिया। उक्त विचारधरा का अनुसरण करने वाले समकालीन नाट्यकारों ने ऐतिहासिक कथा वृत्तों को साहित्यिक कलेवर देकर साहित्य और इतिहास के सम्बंध् को निकटता प्रदान की।

नाट्यकार उपदेशक के रूप में सांस्कृतिक चेतना के नवनिर्माण की योजना प्रस्तुत करता है। स्पष्टतः आलोचक की भांति सामाजिक स्वतंत्राता में बाध्क शक्तियों का खुलकर विरोध् करता हुआ दृष्टिगत होता है। नाटयकार क्रांतिकारी विचारों द्वारा देश और समाज में नया प्रवर्तन करना चाहता है। भारतेन्दु जी विचार से सामाजिक पुनर्निर्माण के लिये सभी प्रकार के भेदभाव छोड़कर एक मत होना आवश्यक है। नवनिर्माण कार्य में कटिब (होकर कार्य किया जाये तो देश की स्थिति में परिवर्तन हो सकता है। नाट्यकार के विचारों में सामाजिक संगठन को सुदृढ़ बनाकर पारस्परिक सद्भावनाओं अर्जित कर लोक रंजनकारी व्यापक समाज की स्थापना की जा सकती है। मैत्री के क्रमिक सूत्रा में बंध समाज 'वसुध्ैव कुटुम्बकम्' की कल्पना करें तो कोई आश्चर्य नहीं है। संगठित प्रयास पुनः अपनी खोई हुई शक्ति तथा आत्मगौरव सुगमता से हस्तगत कर सकता हे। उस युग की समस्याओं ने कलाकार का व्यकितत्व पूर्ण मानववादी बना दिया है, और अपने सेवा कार्य में सम्पूर्ण मानव समाज का हित देखना चाहता है।

निष्कर्ष

भारतेन्दु ने दिखाया कि यह लूट राज्य है जिसमें भारतवासी दिन–पर–दिन निर्ध्न होते जाते हैं और यहां की सम्पदा विलायत चली जाती है। अंग्रेजों की नीति यहां से कच्चा माल ले जाकर तैयार माल भेजने और भारत को एक खेतिहर उपनिवेश की तरह रखने की है। भारतेन्दु ने विदेशी माल के बहिष्कार स्वदेशी के व्यवहार और देश में ही शिल्प और उद्योग के विकास पर मशीनों के द्वारा पैदावार पर जोर दिया।

भारतेन्दु ने जिस संस्कृति की नींव डाली, वह एक ओर अंग्रेजी राज्य का विरोध् करती थी दूसरी ओर भारतीय रूढ़िवाद को भी चुनौती देती थी, उसका ऐतिहासिक महत्व है। अंग्रेजी राज्य इस सामन्ती संस्कृति का मित्रा था। समाज के पंडे–पुजारी अंग्रेजी राज्य और सामन्तों के सबसे बड़े सहायक थे।

अंग्रेज सरकार देश–भक्ति पूर्ण साहित्य को प्रोत्साहन न देती थी और न दे सकती थी। पुस्तकें कैसी भी छपी हो, यदि उनसे सरकार को भय न हो तो वह उनकी कद्रदानी कर सकती थी। ऐसी सरकार के प्रोत्साहन को भारतेन्दु ने घृणा से ठुकरा दिया।

मौलिक नाटकों की रचना भारतेन्दु ऐसे समय में कर रहे थे जब देश को ऐसे साहित्य की जरूरत थी, ऐसा साहित्य जो श्रोता को अन्दर तक हिला सके और वह गुलामी की जंजीरों को तोड़ने के लिए स्वयं आगे आये।

भारत की स्वतंत्राता की बिगुल पफूंकने वाले भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को तब तक याद रखा जायेगा, जब तक भारत का अस्तिव रहेगा। भारतेन्दु ने भारत के स्वतंत्रा होने की पूर्ण आस तब जगायी जब सारी जनता हिम्मत हार रही थी।

सन्दर्भ

1. भारतेन्दु का नाट्य साहित्य – वीरेन्द्र कुमार शुक्ल
2. भारतेन्दु हरिशचन्द्र ;परिवर्ति एवं संशोध्ति संस्करणद्ध – लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय
3. वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति – डॉ. सुधेन्द्र कुमार, कादम्बरी प्रकाशन
4. भारतेन्दु के नाटक – गोविन्द चातक, तक्षशिला प्रकाशन
5. नाटककार भारतेन्दु और उनका युग – आचार्य कुंवर चन्द्रप्रकाश सिंह, सुलभ प्रकाशन
6. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएं – रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन
7. भारत–दुर्दशा सृजन – विश्लेषण और पाठ – रमेश गौतम
8. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र – रामविलास शर्मा, विद्या धम – 1372, दिल्ली